राजनीति में भाषा का खेल

अनिल चमड़िया

अजातशत्रु ने तब अपने बूढ़े पिता बिंबसार को नजरबंद कर लिया था। लेकिन नजरबंदी के बावजूद वह आशंकित था कि कहीं महाराज और महारानी जनविद्रोह न करवा दें। लिहाजा उन पर और सख़्त पहरा बैठाने का उसने फैसला किया। लेकिन उसने प्रचार यह करवाया कि महाराज और महारानी को जान का खतरा है और उनकी हिफाजत के लिए ऐसा करना जरूरी था। सत्ता ने भाषा के इस खेल से अपनी असलियत छुपाई। पहले साम्राज्यवाद की स्थापना से लेकर अब तक की सत्ताओं ने यही भाषा-शैली अपना रखी है।

अंग्रेजों के लिए भगत सिंह आतंकवादी थे। भारत और पाकिस्तान के लोगों के लिए शहीद रहे हैं। इस तरह आतंकवाद के बारे में सत्ताओं के मित्र दृष्टिकोण सामने आते हैं। विभाजन के बाद भी पाकिस्तान में भगत सिंह का दर्जा वही रहा है। लेकिन अभी भारतीय कश्मीर में जो लोग अपनी कार्रवाइयां चला रहे हैं, पाकिस्तानी उन्हें आजादी की लड़ाई कहता है। भारत की सरकार उसे सीमा पार से चलाया जा रहा आतंकवाद बता रही है। लेकिन सत्तावानों की इस भाषा में तीसरा और मूल सत्य ही गायब होता चला गया है। इस भाषा में वह कश्मीर नज़र ही नहीं आता है जो 1947 से ही शुरू होता है, जिसे आम काश्मीरियों ने गढ़ने की शुरुआत की थी।

तब पाकिस्तान के कबिलाइयों ने भारतीय कश्मीर पर हमला किया था। शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर को बचाने के लिए नेशनल

मलिशिया बनाने का आह्वान किया था। ''हमलावर ख़बरदार, हम कश्मीरी हैं तैयार'' पूरी घाटी में यह नारा गूंजा था। लोगों ने बंदूकें उठाई थीं। सत्ता के पास तब बंदूकें और उसे ढोने वालों की तादाद बहुत कम थी। कश्मीरी बंदूकों के इतिहास के बारे में जो लोग जानते हैं, उन्हें मालूम है कि उस समय राइफल 303 ली-इनफील्ड एमके फोर ही औसत कश्मीरी के लिए एक सपना होता था। यानी कश्मीरियों ने हथियारों से कम अपनी ताक़त से ज़्यादा लड़ा था। शीला भाटिया बताती हैं कि उन्होंने घाटी की बुर्के वाली महिलाओं को हथियारबाजी सीखते देखा था। तब ये मर्द-महिला यानी हर कश्मीरी भारत के लिए राष्ट्रीय एकता और अखंडता का नायक था। नाच-गाना, लिखने-पढ़ने, नाटक-ड्रामा करने वालों ने तब कल्चरल फ्रंट का गठन किया था और शीला भाटिया नेतृत्व में थी। तब कई वैसे कश्मीरियों ने उर्दू में लिखना भी छोड़ दिया था, जिनके नामों को सुनकर अब उन्हें केवल मुसलमान के रूप में देखने के हम आदी बना दिए गए हैं। तब जबकि पाकिस्तान ने कश्मीरियों को इस्लाम का वास्ता दिया था और भारत ने राष्ट्रीय एकता और अखंडता का, तब लोगों ने राज्य के विचार के सामने धर्म को अस्वीकार किया था। राज्य के विचार ने धर्म पर जीत हासिल की थी।

लेकिन अब वह आतंकवादियों का गढ़ माना जा रहा है। कहा जा रहा है कि इस्लाम को आधार बनाकर धर्मोन्माद पैदा किया जा रहा है। लेकिन यह तो कोई नई बात नहीं है। नई बात तो इसमें तलाश की जानी चाहिए कि लोग इस्लाम के समर्थन में धर्मोन्मादी होते जा रहे हैं या फिर राज्य ने ही अपने आधुनिक विचारों को धर्म में परिवर्तित कर दिया है। राष्ट्रीय एकता और अखंडता को ही राज्य ने एक वैसे कट्टरवादी धर्म के रूप में स्थापित करने की कोशिश की है जो किसी भी अध्यात्मिक धर्म से ज्यादा खतरनाक स्थितियां पैदा करता दिखाई पड़ रहा है। कोई कट्टरवादी संगठन या विरोधी देश जिस तरह से धार्मिक भावों को अपना हथियार बनाता है, उसी तरह से ही राज्य राष्ट्रीय एकता और अखंडता की भावना का इस्तेमाल कर रहा है।

अमेरिका में 11 सितंबर की आतंकवादी कार्रवाई के बाद इस्लामी आतंकवाद को खतरे के रूप में खड़ा किया गया। पहले अमेरिकी और ब्रिटिश मीडिया ने जो कहा, उसे भारतीय मीडिया ने भी कापी किया। फिर अमेरिकी और ब्रिटिश राजनैतिक सत्ता ने जो कहा, अपने देश की राजनीतिक सत्ता ने अपनी भाषा में दोहराया। आतंकवाद को किसी धर्म से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए। सत्ता की यह अनूठी भाषा अपने ढंग से इस तरह काम करती है कि आतंकवाद धर्म से जुड़कर दिखने लगता है। जैसे लोगों के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को राज्य अपने आतंकवाद विरोधी लड़ाई के रूप में परिवर्तित कर लेता है।

राजनैतिक सत्ता जिस समय आतंकवाद को इस्लाम से जोड़कर नहीं देखने की अपील कर रही थी उसी समय दिल्ली में भजनपुरा की पुलिस साम्राज्यवाद विरोधी पर्चे बांटने वाले चार छात्रों को ओसामा बिन लादेन के समर्थन में पर्चे बांटने का आरोप लगाकर राष्ट्रद्रोह का मुकदमा दायर कर लेती है। उसी समय उस *सिमी* पर प्रतिबंध लगा देती है जिसकी पहचान किसी धर्म विशेष के छात्रों के संगठन के रूप में है। और उसी समय आतंकवाद निरोधक अध्यादेश पास करती है। अध्यादेश लागू करते समय वह इसका *टाडा* की तरह किसी विशेष धार्मिक समुदाय के खिलाफ इस्तेमाल किए जाने की आशंका को तो ख़ारिज करती है लेकिन उसी समय केवल अल्पसंख्यकों के दर्जनों संगठनों पर प्रतिबंध लगाने के साथ उन्हें आतंकवादी संगठन भी करार देती है। यह उसी तरह की शैली है जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उससे जुड़े हिंदूवादी संगठन भारत के किसी गली-मुहल्ले में पाकिस्तान विरोधी नारा लिखते हैं। वे अपने नारे में राष्ट्रप्रेम दर्शाते दिखते हैं लेकिन उस पूरी भाषा और शैली से गली-मुहल्ले में रहने वाले या गुजरने वाले किसी धर्म-विशेष के लोगों के प्रति शंका और उनमें असुरक्षा प्रगट करने की साफ-साफ कोशिश भी होती है। जैसे अभी केवल बहस होनी चाहिए कि अमेरिका का अफ़गानिस्तान पर हमला क्या जायज़ है? लेकिन इस समय मदरसों, महिलाओं को बुर्के में रखने, कट्टरवादी बनाम उदारवादी मुसलमान जैसे मुद्दों पर सबसे ज़्यादा बहस हो रही है। भारत के कट्टरपंथियों की इस रूप में चर्चा की जाती है, कि वह तालिबान और ओसामा बिन लादेन समर्थक लगने लगे। इस तरह की भाषा वास्तव में अमेरिका के अफगानिस्तान पर हमले को जायज ठहराने और आतंकवाद को एक धर्म-विशेष से जोड़कर

दिखाने से रत्ती-भर भी कम नहीं है।

आतंकवाद के इस तरह विरोध के नाम पर बहुत ही बारीकी से राज्य की मूलभूत अवधारणाओं और सिद्धांतों के ही सांप्रदायिकरण करने की साजिश की जा रही है। राष्ट्रीय एकता और अखंडता के नारे की मुख्य अंतर्धारा की वास्तविकता उसे हिंदूवादी बनाने में छिपी हुई है। धर्मोन्मादी जिस नतीजे की ओर ले जाते है, उसी नतीजे पर राज्य भी ले जाता दिखाई पड़ रहा है। संकेत के तौर पर समझा जाए कि इस आतंकवाद के विरोध की आड़ में किन-किन लोकतांत्रिक मूल्यों और परंपराओं को ध्वस्त किया जा रहा है। जार्ज फर्नांडीज की रक्षा मंत्री के रूप में नियुक्ति लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए एक बड़े खतरे का संकेत है। यह खतरा इस रूप में केवल नहीं कि संसदीय परंपराओं के खिलाफ जाकर तहलका प्रकरण की जांच के दौरान ही उनकी रक्षामंत्री के पद पर बहाली कर दी गई; बल्कि पहले गंभीर खतरे का संकेत तो यह है कि जार्ज को इस तरह पेश किया गया कि *तहलका* मामले में आरोपी इस रक्षामंत्री का कोई विकल्प नहीं है। दूसरा खतरा यह कि जार्ज ने कुर्सी संभालते ही कश्मीर में सैनिक कार्रवाई की जोर-शोर से वकालत शुरू कर दी। नैतिक तौर पर कमज़ोर सत्ताएं इस तरह उग्रता का सहारा कैसे लेने लगती हैं। यही नहीं इस आतंकवाद की आड़ में अमेरिकी शासकों की भाषा शैली ने भी अपने पांव जमा लिए हैं। जिस तरह से जार्ज बुश ने कहा कि जो हमारे साथ नहीं है, वह आतंकवाद के साथ है। उसी तरह से लालकृष्ण आडवाणी ने कहा कि आतंकवाद निरोधक कानून के पक्ष में जो नहीं है, वह राष्ट्रीय एकता और अखंडता का विरोधी है। सत्ता अपनी भाषा के जरिए एक ऐसा भटकाव पैदा करना चाहती है ताकि किसी मुद्दे पर बहस वहीं केंद्रित हो जहां वह चाहती है। राष्ट्रीय भावनोन्माद के आगे तर्क असुरक्षित महसूस करने लगे, राष्ट्रीय एकता और अखंडता की अवधारणा से विविधता और अल्पसंख्यकों के समान अधिकार की आवाज खामोश हो जाए, अपने देश में राष्ट्रीय एकता और अखंडता और उसके साथ ही आतंकवाद विरोध की भाषा में अलोकतांत्रिक, अल्पसंख्यक विरोधी और मानवीय मूल्यों को विकसित करने वाले बुनियादी आंदोलन की जो विरोधी ध्वनि स्थापित की जा रही है, उसे समझा जाना समय की मांग है।